धुन या धार को पकड़ कर जो घट घट में मोजूद है रास्ता ते हो सकता है और रास्ता उसका नैन नगर में होकर जारी है और कई मुक़ाम रास्ते में पड़ते हैं ॥

सवाल ३—रास्ते का भेद और जुगत शब्द के सुनने की किस से मालूम हो सकती है और क्या क्या संजम या लवाज़मे वास्ते चलने के उस रास्ते पर दरकार हैं ॥

जवाब ३—सन्त सतगुर या साध गुरू से जो आप निज मुक़ाम पर पहुंचे हैं या कुछ रास्ता ते कर चुके हैं और धुर मंज़िल पर पहुंचनेवाले हैं भेद और जुगत चलने की मिल सकती है। उनके वचन की परतीत और उनके और सत्यपुरुष राधास्वामी के चरनों में प्रीत करने और उनकी सरन लेने से कमाई आसानी से बन सकती है, और संजम यह है कि सुरत चैतन्य है और यही सुख और आनन्द और ज्ञान और शब्द सरूप है सो यह कितने ही खोलों अथवा परदों में इस देश में गुप्त और पोशीदा है और यह खोल मन और माया के हैं। इन खोलों और उनके सम्बन्धी गुनों याने खसलतों में अटकना और बरतना दिन दिन कम करना और एक दिन प्रेमा भक्ती और अभ्यास की मदद से इन से अलहदगी कर के निरमल चैतन्य सरूप अपने में प्राप्त होना संजम और कमाई है और वहां से निज धाम यानी सत्यलोक और राधास्वामी धाम में जहां से आदि में सुरत आई थी फिर पहुंचना चाहिये। इसको जीव का सच्चा और पूरा उद्धार कहते हैं ॥

सवाल ४—अभ्यास की हालत में जो दिक्कतें और विघन वाके होते हैं इसका क्या सबब है और उनके दूर करने के वास्ते क्या जतन दरकार हैं॥

जवाब ४—जिस क़दर विघन और मुशकिलें पड़ती हैं वह बसबब मुहब्बत इस सुरत की साथ मन और माया और उनके ख़वास और गुन और पैदा किये हुए पदार्थों के हैं। बहुत अरसे से सुरत अपने निज धाम से उतर कर अनेक मुक़ामों में मन और माया के खोल अथवा देहियों और उनके पैदा किये हुए पदार्थों के संग रच पच गई है और माया के देस में जहां अंधेरा है उस में फंस कर अपने निज घर और अपनी असली ताक़त और हालत और रूप को भूल गई है और मन और माया के संग यारी करके उसके पदार्थों में इसको निहायत दर्जे की आशक़ी हो गई है। जिस क़दर जल्दी यह अपने घर के भेद और उसके चलने की जुगत को समझ कर और उसकी सच्ची परतीत करके अपने पिता राधास्वामी के चरनों में प्रीत दिन दिन जियादा करके चलना शुरू करे और माया के पदार्थों और उसके बनाये हुये खोल अथवा देही में मुहब्बत कम करती जावे उस क़दर विघन जल्दी और आसानी से दूर हो सकते हैं और जो कि सुरत यहां बहुत कमज़ोर है और अजान है इस वास्ते मुनासिब है कि सत्यपुरुष राधास्वामी की दया और सत सतगुर अथवा साध गुरू की मेहर लेकर और उनका प्रेम हृदय में जगा कर रास्ता तै करना शुरू करे। उनकी मदद से सब मुशकिलें आसान हो

जावेगी। और संसार में ज़रूरत के मुवाफ़िक़ बरताव करे और मध्य की चाल चले और फ़ज़ूल ख़ाहिशें वास्ते तरक्क़ी संसार और उसके सामान के न उठावे तो आहिस्तः आहिस्तः रास्ता कटता जावेगा और एक दिन यह निज घर में पहुंच जावेगी॥

सवाल ५—सत्य और असत्य का क्या भेद है॥

जवाब ५—शब्द अथवा सुरत चेतन्य है और यही सत्य है और बाक़ी पसारा जो नज़र आता है सब मायाकृत और नाशमान है और चेतन्य ही सुख और आनन्द सरूप है। और माया और उसके पदार्थ दुख रूप हैं। माया और चेतन्य की मिलौनी से पैदा हुए हैं। सो जब तक माया देश के पार सुरत न जावेगी तब तक निरमल सुख और परम आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता है और तीन लोक अथवा पिंड और ब्रह्माण्ड माया के देश में शुमार किये जाते हैं। इनके पार दयाल देश यानी सत्यलोक व राधास्वामी धाम है और वही अविनाशी सुख और परम आनन्द का देश है॥

सवाल ६—सुरत का क्या सरूप है और शब्द का सुनना या ध्यान किस तरह से करना चाहिये॥

जवाब ६—सुरत का जो असली स्वरूप है वह तो दसवें द्वार में पहुंच कर नज़र आवेगा ज़बान से उसका बरनन बख़ूबी नहीं हो सकता। मगर इस मुक़ाम पर जैसा कि उसका ज़ाहिर से समझ में आता है वह शब्द और तवज्जः

सरूप है क्योंकि जहां जिस किसी की तवज्जह या ख़्याल या चित्त जाता है वहीं उस शख़्स को समझना चाहिये ख़्वाह कहीं बैठा हो और चाहे किसी से बातचीत करता होवे। और जब कोई मर जाता है तो कहते हैं बोलता निकल गया यानी जब तक कि शख़्स बोलता है ज़िन्दा है जब बोल बन्द हो गया तब जान यानी सुरत निकल गयी इस वास्ते अभ्यासी को चाहिये कि अपने चित्त को अन्तरी स्वरूप और आवाज़ में लगावे और उस वक़्त दूसरा ख़्याल न आने देवे वरन आवाज़ और स्वरूप का ध्यान ग़लत हो जावेगा ॥

सवाल ७—जो कोई सन्त मत का भेद नहीं जानते और सुरत शब्द का अभ्यास नहीं करते उनकी सुरत देह को छोड़ कर कहां जावेगी ॥

जवाब ७—यह लोग दयाल देश में जहां कि पूरन आनन्द हमेशा का हासिल होवे नहीं जा सकते मगर अपनी करनी और समझ और इष्ट के मुवाफ़िक़ नीचे ऊंचे स्थान में सन्तों के तीसरे दर्जे में जो कि ब्रह्मांड के नीचे है और कोई कोई ब्रह्मांड यानी दूसरे दर्जे के नीचे के हिस्से में भरमते रहेंगे और कोई काल सुख पाकर फिर देह में आवेंगे और फिर अपनी करनी के मुवाफ़िक़ जैसी देह में बन पड़ेगी ऊंची नीची जोन में नीचे के लोकों में पैदा होवेंगे। और फिर ठीक नहीं कि मनुष्य यानी इनसानी जोन पावें या नहीं और कब पावें ॥

# राधास्वामी दयाल की दया
# राधास्वामी सहाय

## निजउपदेश राधास्वामी

### भाग २

१—जो दुनिया के हाल को ग़ौर करके देखा जावे तो मालूम होता है कि सब जीव जन्तु सुख के हासिल करने की चाह रखते हैं और उस चाह के पूरा करने के लिये रात और दिन मेहनत कर रहे हैं ॥

२—जो सुख कि देहधारियों को इस संसार में हासिल होते हैं वह सब इन्द्रियों के भोग हैं ॥

३—और इन्द्रियां स्थूल शरीर में हैं और यह शरीर और इन्द्रियां दोनों जड़ हैं। सुरत यानी रूह की चैतन्यता से चैतन्य शक्ती इन में मालूम होती है ॥

४—और जो सुख कि इन्द्रियों के भोग हैं वे सब नाशमान और थोड़ी देर का आनन्द और रस देने वाले हैं। बाद उसके फिर चाह उन्हीं भोगों की बार बार उठती है और हर दफ़ा उन भोगों के हासिल करने के वास्ते जतन और मेहनत करना पड़ता है ॥

५—ग़ौर करने से यह भी मालूम होता है कि जिस क़दर आनन्द और रस और सुख इन्द्रियों का प्राप्त होता है वह सुरत यानी रूह की धार के सबब से है जो कि वक़्त भोग करने के जिस इन्द्री का वह भोग विषय है उस इन्द्री के द्वारे पर आ बैठती है॥

६—जो सुरत की धार किसी इन्द्री के स्थान पर न आवे तो उस इन्द्री का रस बिलकुल नहीं मिलता है॥

७—स्वपन अथवा ख़्वाब देखने की हालत से मालूम होता है कि रस और आनन्द जैसा कि जागने की हालत में इन्द्रियों के भोग भोगने के वक़्त हासिल होता है उसी क़दर स्वपन अवस्था में भी प्राप्त होता है॥

८—इससे ज़ाहिर है कि सर्व इन्द्रियों की शक्ती और रस और आनन्द अन्तर में मौजूद हैं क्योंकि ख़्वाब के वक़्त बाहर की इन्द्रियां और देह दोनों बेकार होती हैं और कोई पदार्थ भी बाहर मौजूद नहीं होता है॥

९—यह भी ग़ौर करने से मालूम होता है कि जिस क़दर इल्म और विद्या और बुद्धि और चतुराई और कारीगरी और चालाकी वग़ैरः की बातें जारी हैं वह सब आदमी ने जारी करी हैं यानी सब किताबें और क़ायदे और पोशीदः भेद क़ुदरत का और ताक़त तीन गुन और पांच तत्त्व और भी हाल आस्मान और ज़मीन और तारागण और सूरज और चांद और जानवर और बनस्पतियां वग़ैरः का सब आदमी ने ज़ाहिर किया है। और जितने मज़े और स्वाद और रस और आनन्द और ख़ुशी वग़ैरः वह सब सुरत की

धार में हैं इससे साबित हुआ कि सुरत कुल इल्म और ज्ञान और आनन्द और शक्ती और सिद्दी वग़ैरः का भंडार और ख़ज़ाना है ॥

१०—सुरत की धार शब्द की धार है क्योंकि जहां धार है वहीं आवाज़ है और यही धार ज्ञान की धार और नूर की धार है ॥

११—ग़ौर करने से यह भी नज़र आता है कि इस लोक में सुरत हर एक देह में कितनी ही तह या गिलाफ़ के अन्दर है और यह गिलाफ़ माया के उस पर वक़्त उतार के अपने निज देश या अस्थान से जैसे जैसे माया के मंडल में होकर सुरत उतरती आई है चढ़ गये हैं ॥

१२—और माया में बहुत से दरजे हैं यानी अति सूक्ष्म और कम सूक्ष्म और सूक्ष्म और स्थूल और ज्यादः स्थूल और निहायत स्थूल वग़ैरः २ ॥

१३—सुरत असल में चैतन्य और ज्ञान और आनन्द रूप है पर माया के संग से अनेक धारें मिलौनी की पैदा हुईं और वही धारें अनेक तरह की शक्ती की धारें हैं जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार वग़ैरः ॥

१४—और माया के मसालों के मिलौनी के सबब से गिलाफ़ पैदा हुए हैं इन्हीं गिलाफ़ों का नाम देह है और इन गिलाफ़ों का संग और उन में मोहब्बत करने से सुरत को सुख और दुःख भोगने पड़ते हैं ॥

१५—असली रूप सुरत का माया और उसके गिलाफ़ों

से बिलकुल अलहिदः है जैसे स्वपन् के वक्त सुरत को स्थूल देह के दुःख सुख की ख़बर नहीं होती और गहरी नींद में अन्तःकरन के दुःख सुख की जो सूक्ष्म शरीर में मालूम होते हैं ख़बर नहीं होती ॥

१६—इस से साफ़ ज़ाहिर है कि जिस क़दर दुःख सुख जीव भोगते हैं यह स्थूल और सूक्ष्म देहियों के संगत से भोगना पड़ता है असली रूप सुरत का देहियों के रूप से बिलकुल जुदा है ॥

१७—जो कोई देही के दुःख और सुख से बचना चाहे और निरमल और सच्चा और ठहराऊ आनंद और खुशी हासिल करना चाहे तो उसको चाहिये कि जिस तरह मुमकिन होवे देहियों के संग से सुरत की धार को अलहिदा करके पहले सुरत के स्थान पर याने दसवें द्वार में लौटावे ॥

१८—और फिर वहां से सत्तलोक और राधास्वामी धाम में जहां कि सुरत का निज घर है और वही कुल सुरतों का भंडार है पहुंचावें तब उसको असली सुख और पूरन आनन्द कि जो कभी न घटे और न नाश होवे प्राप्त होना मुमकिन है और जो कि वहां कोई ग़िलाफ़ माया का नहीं है तो वहां किसी तरह का कष्ट और कलेश भी नहीं है ॥

१९—दुनियां के सुख जितने हैं वह मलीन यानी कसीफ़ हैं और उनका रस और स्वाद देह और इन्द्री और कोई २ अन्तःकरन तक मालूम होता है मगर उस में पूरी शांति नहीं होती है ॥

२०—और जो रूहानी सुख सुरत के देश में या उसके भंडार के देश में मिल सकता है वह ब्रह्मांड में तो सुरत और सूक्ष्म मन को और दयाल देश में खास सुरत को प्राप्त होता है और वह हमेशा क़ायम रहेगा ॥

२१—इस पूरन सुख और आनन्द के हासिल करने के लिये सिर्फ़ एक दफ़ः जतन करना पड़ेगा और वह जतन यह है कि गि़लाफ़ या परदों को फोड़ कर उनके पार अव्वल सुरत देश और फिर वहां से दयाल देश में जाना चाहिये ॥

२२—जब सुरत उलट कर एक दफ़ः दयाल देश में पहुंच जावे तब फिर इस देश में यानी माया और गि़लाफ़ों के मंडल में नहीं आवेगी और तब जनम मरन से रहित हो जावेगी क्योंकि मौत गि़लाफ़ की है न कि सुरत की। यानी जब सुरत देह को छोड़ जाती है तब यह देह जैसी असल में जड़ थी वैसी जड़ रूप होकर पड़ी रहती है इसी हालत को मौत कहते हैं ॥

२३—सुरत के ऊपर जो गि़लाफ़ चढ़े हुए हैं यह माया के हैं सूक्ष्म और स्थूल वग़ैरः और यही हर एक गि़लाफ़ एक २ देह हो रहा है मसलन् अस्थूल गि़लाफ़ अस्थूल देह और सूक्ष्म गि़लाफ़ सूक्ष्म देह वग़ैरः ॥

२४—यह सब गि़लाफ़ सुरत की धार से जो इन में आती जाती है जिन्दः और चैतन्य हैं इस वास्ते इसी धार को जो शब्द की धार है और वही जान और नूर की धार है पकड़ कर चलना और चढ़ना यानी गिलाफ़ों के पार

जाना चाहिये इस चलने की तरकीब को सुरत शब्द योग या सुरत शब्द अभ्यास कहते हैं ॥

२५—इस जगह तो यह सब गिलाफ़ देही कहलाते हैं और बाहर की रचना में यही गिलाफ़ जुदा जुदा मंडल हैं और हर एक मंडल उसी क़िस्म की देही के साथ मेल रखता है ॥

२६—इस लोक में सुरत कितने ही गिलाफ़ों में गुप्त रहती है सबब उसका यह है कि यह असली देश सुरत का नहीं है वह असली देश कितने ही गिलाफ़ यानी मंडलों के पार है ॥

२७—और जब तक इन गिलाफ़ों के पार सुरत न जावेगी तब तक अपने निज घर यानी अपने पिता सत्यपुरुष राधास्वामी के देश में नहीं पहुँचेगी ॥

२८—और तब तक माया के देश में अन्दर किसी न किसी गिलाफ़ के क़याम इसका रहेगा और बसबब प्रीत उस गिलाफ़ के उसका जनम मरन भी होता रहेगा यानी जब २ गिलाफ़ जो कि माया के बने हुए हैं और वही देही रूप हैं बदले जावेंगे तबही दुःख होगा और इसका नाम जनम मरन है ॥

२९—और जो कि दुःख सुख की धारें बसबब मिलौनी सुरत और माया के हर एक गिलाफ़ के साथ लगी हुई हैं वह सुख और दुःख गिलाफ़ की प्रीत के सबब से सुरत को बराबर भोगने पड़ेंगे और सुरत जब तक इन गिलाफ़ों से

जुदा न होवेगी तब तक सच्चा उद्धार यानी सच्ची मुक्ती और सच्चा आनन्द हासिल न होगा ॥

३०—इस वास्ते जो कोई सच्चा और पूरा सुख और आनन्द चाहे ख़्वाह मर्द होवे या औरत उस को ज़रूर और मुनासिब है कि सुरत शब्द अभ्यास को करना शुरू करे तब वह आहिस्तः आहिस्तः गिलाफ़ों से एक रोज़ जुदा हो जावेगा सिवाय सुरत शब्द अभ्यास के और कोई सूरत गिलाफ़ों से जुदा होने की नहीं है ॥

३१—और जो कि ख़ास बैठक सुरत की स्थूल देह में दोनों आंखों के मद्ध में अन्तर की तरफ़ है जिस को तीसरा तिल और शिवनेत्र और नुक़तः सवेदा भी कहते हैं और वहां से दो धारें दोनों आंखों में आई हैं और यहां पर बैठकर सुरत तमाम पिंड और दुनियां की काररवाई करती है इस वास्ते इसी दरवाज़े से रास्ता निज घर की तरफ़ च-लने का शुरू होता है ॥

३२—सुरत की ताक़त और शक्ती निहायत है यानी यही सुरत जो कि सच्चे मालिक सत्यपुरुष राधास्वामी की ख़ास अंश है उतार के वक़्त ब्रह्मांड और पिंड में कुल रचना करती चली आई है और जब यह अपने देश को उलट कर जाती है यानी पिंड देश को छोड़ जाती है उसी वक़्त सब रचना पिंड की सिमट जाती है और इसी का नाम मौत है ॥

३३—जिस क़दर कि शक्ती और कूवतें आसमानी और ज़मीनी हैं और पांचो तत्व—ज़मीन, पानी, हवा, अग्नि,

और आकाश,—और तीनों गुन—सतोगुन, रजोगुन, और तमोगुन,—और रोशनी, और गरमी, और खैंच शक्ती, और बनाव शक्ती, और मिलाव शक्ती, और हटाव शक्ती, और रंगामेज़ी की ताक़त वग़ैर: वग़ैर: सब सुरत यानी रूह की ताबेदार हैं क्योंकि असल में सुरत आप उनकी पैदा करने वाली है ॥

३४—इसका नमूना इस दुनियां में हर वक़्त और हर जगह वक़्त पैदाइश नये जिस्म के आंख से नज़र आता है देखो अफ़यून का बीज जिस को खशखाश कहते हैं किस क़दर छोटा है और मुआफ़िक़ और बीजों के उस पर अस्थूल और सूक्षम खोल यानी गिलाफ़ चढ़े हुए हैं और उनके अन्दर मग़ज़ और मग़ज़ के अन्दर बैठक रूह उस बीज की है ॥

३५—जिस वक़्त कि जिस्म यानी दरख़्त की पैदाइश शुरू होती है उस वक़्त अव्वल धार रूह के मुक़ाम से जो कि अन्तर में उस बीज के मग़ज़ में मौजूद है पैदा होती है और वही धार कुल्ल काररवाई दरख़्त के पैदा करने की करती है और जिस क़दर कि आस्मानी और ज़मीनी क़ूवतें और ताक़तें ऊपर लिखी गई हैं सब ताबेदारी इस धार की करके दरख़्त के बनाव और बढ़ाव में मदद देती हैं जब तक कि वह पूरा होवे और फूल फल उस में लगें ॥

३६—और जब सुरत यानी रूह एक जिस्म को छोड़ कर जाती है ख़्वाह आदमी का होवे या जानवर या दरख़्त का फ़िलफ़ौर वह जिस्म जो खूबसूरत और कारखाई करने

वाला था बेकार होकर थोड़ी देर में गल जाता है ख़्वाह सड़ जाता है और तमाम अंग अंग उसके बिगड़ जाते हैं और ख़राब हो जाते हैं ॥

३७—इस से ज़ाहिर है कि वह ताक़तें और क़ूवतें और तत्त्व और गुन और रोशनी और हवा और गरमी जो रूह की मौजूदगी में उस जिस्म यानी देह की काररवाई में मदद देते रहे हैं रूह के अलहिदा होने पर आपस में बिगड़ कर उस जिस्म को ख़राब और बरबाद कर देते हैं यानी सब कारवाई तत्त्व और गुन और शक्ती और क़ूवतों की रूह के हुक्म से थी और जब वह जुदा हो गई तब यह भी बेकार हो गये और जिस्म यानी देह जो इनकी ताक़तों से ठहरा हुआ था ख़राब और टुकड़े टुकड़े होकर हर एक अजज़ा उसके रफ़्ता रफ़्ता अपने अपने असल में मिल गये ॥

३८—जब सुरत या रूह की ऐसी ताक़त और हुकूमत हर एक पिंड में है और यह सत्यपुरुष राधास्वामी की अंश है फिर इसके भंडार और ख़ज़ाने की ताक़त और हुकूमत का जिसके पेर के थोड़े हिस्से में कुल रचना है क्या उन्मान और क़यास किया जावे ॥

३९—वही भंडार कुल मालिक और कुल का हाकिम और कुल करता और ऐन चेतन्य और आनन्द सरूप है और जो कि कुल रचना उसके अंशों की ताक़त से जारी है और क़ायम है फिर वही भंडार असली सत है और सब पसारा उसके और उसकी अंशों के आसरे ठहरा हुआ है ॥

४०—असल में उस पसारे का रूप ठहराऊ नहीं है

इस वास्ते वह भंडार या उसकी अंश यानी सत्यपुरुष राधास्वामी और सुरत प्रीत करने के लायक़ है और उस में प्रीत करने से सदा का निर्मल आनन्द मिलेगा॥

४१—जो कोई पसारे के रूप में प्रीत करेगा तो जब २ उन रूपों का नाश या अभाव होगा तब तब दुःख और कलेश पावेगा॥

४२—इस वास्ते मुनासिब है कि पसारे के रूपों में साधारन और वाजिब प्रीत वास्ते गुज़ारे के इस दुनिया में और काम लेने के इस देह से करना चाहिये और सच्ची असली प्रीत राधास्वामी के चरणों में करना लाज़िम है। और पसारों के रूपों के हासिल करने के लिये साधारण जतन करना चाहिये और ख़ास जतन राधास्वामी के चरणों में पहुंचने के वास्ते करना ज़रूर और मुनासिब है॥

४३—इसी जतन का नाम सच्चा परमारथ है और बाक़ी सब काम सच्चे मालिक को भूल कर भरम और धोखा है उन में सच्चा और पूरा परमार्थी आनन्द प्राप्त नहीं होगा। अलबत: शुभ करम का फल मिलेगा मगर वह फल ठहराऊ नहीं होगा और उस में आनन्द भी बहुत थोड़ा होगा और कुछ अरसे बाद जाता रहेगा और उस फल के भोगने के लिये बारम्बार देह धरना पड़ेगा॥

४४—यह जतन या तरकीब पहुंचने की राधास्वामी के देश में उसके भेदी संत सतगुर या साध गुरू या उनके सच्चे और प्रेमी सतसंगी से मालूम हो सकती है इस वास्ते अव्वल खोज सतगुर या साध गुरू का ज़रूर है और जब वे

मिल जावें तो उनके चरनों में मुहब्बत करना चाहिये और उनके वचन के मुवाफ़िक़ सुरत शब्द योग का अभ्यास शुरू कर देना चाहिये ॥

४५—संत मत सब से ऊंचा और सब से बड़ा है इस वास्ते इस मत के अभ्यासी को कुल मुक़ामात जो कि सिद्धान्त हर एक मत के हैं रास्ते में सुन्न याने दसवें द्वार के नीचे मिलेंगे और उन सब को देखता हुआ सन्तों का अभ्यासी एक रोज़ निज घर में यानी राधास्वामी के चरनों में पहुंच जावेगा ॥

# राधास्वामी दयाल की दया
# राधास्वामी सहाय

## निजउपदेश राधास्वामी

### भाग २

१—सन्त मत के अभ्यासी को मास अहार और शराब और और नशों की चीज़ का खाना या पीना नहीं चाहिये नहीं तो उसके अभ्यास में फ़रक़ पड़ेगा और हरज होगा ॥

२—और यह भी मुनासिब है कि संसारी लोगों से ज़रूरत के मुआफ़िक़ मेल रक्खे और जियादा उनको मुहब्बत और उनका संग न करे नहीं तो उनके ख़्याल और चाहें उसके मन में भी अपना असर पैदा करेंगी और भजन में फ़रक़ पड़ेगा ॥

३—खान पान में इस क़दर इहतियात चाहिये कि क़रीब चौथाई के या तिहाई के अपना खाना आहिस्ता आहिस्ता कम कर देवे । इस में हलका रहेगा और नींद और सुस्ती कम आवेगी और भजन दुरुस्त बनेगा ॥

४—दुनिया की चाहें बहुत उठाना नहीं चाहिये सिर्फ़ इस क़दर कि जो वास्ते अपने और कुटुम्ब के गुज़ारे के

मध्य के दर्जे पर ज़रूरी होवे और फ़ज़ूल चाहें वास्ते पैदा करने और बढ़ाने धन और माल और इज़्ज़त और नामवरी के नहीं उठाना चाहिये। और न उनके लिये फ़ज़ूल जतन करना मुनासिब है॥

५—वक़्त भजन के और ध्यान के मन और इन्द्रियों को रोक कर अन्तर में शब्द और स्वरूप में लगाना चाहिये। और जो मन चंचलता करे और तरंगे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईरषा, विरोध, वग़ैर: की उठावे तो उसको थोड़ी देर नाम का सुमिरन या सरूप का ध्यान करके उस तरफ़ से हटाकर शब्द और स्वरूप में जिस क़दर बने लगाना और ठहराना चाहिये और राधास्वामी दयाल के चरनों में वास्ते सफ़ाई मन के जब तब सच्ची प्रार्थना करनी चाहिये॥

६—दुनिया के सब कामों में कुल मालिक राधास्वामी दयाल की मौज के अनुसार बरताव चाहिये। पर हमेशा दस्तूर के मुवाफ़िक़ जतन मुनासिब वास्ते हर काम के करना चाहिये और उसका फल जैसा मौज से होवे उसको जैसे बने वैसे मंजूर और क़बूल करके अपने सच्चे मालिक का हमेशा शुकराना करना चाहिये। जो काम मन के मुवाफ़िक़ न होवे तो समझना चाहिये कि इसी में फ़ायदा होगा और इसी सबब से ऐसी मौज हुई। पर यह बात उसी से बन आवेगी जिस के मन में सच्ची परतीत और सच्ची सरन राधास्वामी दयाल की है और संसार से थोड़ा बहुत बैराग है॥

७—प्रेमी अभ्यासी को मुनासिब है कि अपने मन की

चौकीदारी यानी निरख और परख करता रहे कि किस किस तरफ़ मन जाता है और क्या क्या चाहें उठाता है और फ़जूल और नामुनासिब ख़्यालों और चाहों को रोकना और बढ़ने न देना चाहिये। और जहां तक बने किसी शख़्स को अपने मतलब के लिये दुख किसी क़िसम का न पहुंचावे और जो हो सके तो आराम और सुख पहुंचावे इस में सच्चे मालिक की प्रसन्नता और रज़ामन्दी और प्रेम की तरक्क़ी प्राप्त होगी॥

# राधास्वामी दयाल की दया
# राधास्वामी सहाय

## निजउपदेश राधास्वामी

### भाग ४

१—हर कोई भजन की तरक़्क़ी के वास्ते दया चाहता है। दया की धार हर वक़्त तैयार है पर उसकी प्राप्ती के वास्ते अधिकार चाहिये। सो इस अधिकार की प्राप्ती के लिये उसको मुनासिब है कि सब ख़्याल और चाहें छोड़ कर और परम पुरुष राधास्वामी के चरणों में बिरह और प्रेम संग लेकर भजन में लगे। दया और प्रेम की धार वही है जो शब्द और सुरत की धार है और वह धार हर वक़्त मौजूद है पर ख़ोलों से ढकी हुई है और जितने कि ख़्याल और गुनावन और चाहें उठतीं हैं वह किसी न किसी ख़ोल के रचना की धार हैं। सो जब तक कि ऐसे ख़्याल और चाहें ज़बर रहेंगी वे मन को और उसके साथ सुरत को ज़रूर अपनी तरफ़ खींचेंगी। इस सबब से मन और सुरत किसी न किसी ख़ोल में अटक कर झुकाव उनका नीचे और बाहर की तरफ़ रहा आवेगा और अन्तर में शब्द की धार के संग नहीं मिलेंगे। बल्कि उसे छूने भी नहीं पावेंगे इस सबब से भजन का रस और आनन्द नहीं आवेगा।

२—गुनावन और ख़्याल जब हलके होंगे जब कि (१) इसके मन में संसार के भोगों की तरफ़ से थोड़ा बहुत बैराग होगा (२) और सत्यपुरुष राधास्वामी दयाल के चरणों का सच्चा निश्चय और भाव होगा (३) और सच्ची सरन और ओट उनके चरनों की ली होगी और जो मन में (१) दूसरों का भाव धरा हुआ है और (२) सुरत शब्द मारग की महिमा इस तौर पर कि सिवाय इसके दूसरी जुगत निज घर में पहुंचाने की और सच्ची मोक्ष और उद्धार हासिल करने की नहीं है मन में नहीं समाई है तो अन्तर में भय और भाव से ख़ाली रहकर भजन में दुरुस्ती के साथ नहीं लगेगा और अपनी कसर को न पहिचान कर उसके दूर करने का जतन नहीं करेगा और उलटा सतसंग में और सतगुरु में दोष लगाने को तैयार रहेगा ॥

३—और ऐसे सतसंगी का हाल यह है कि दुनिया और उसके पदार्थों में ऐसी आशक्ती है कि दिल से उनको चाहता है और जो समझौती के बचन सुनाये जावें उनके मुआफ़िक़ थोड़ा बहुत बरताव भी नहीं करता तो फिर कैसे दया का असर परघट मालूम होवे ॥

४—राधास्वामी बड़े दयाल हैं कि ऐसी हालत पर कभी कभी अपनी दया से ऐसे जीवों को जो नित्य नेम से भजन करते हैं थोड़ा बहुत रस और आनन्द देते हैं पर जो यह ज़्यादा दर्जे की तरक़्क़ी चाहे और उसकी प्राप्ती के वास्ते जल्दी करे तो जब तक कि थोड़ी बहुत सफ़ाई मन की नहीं करता जावेगा जल्द तरक़्क़ी नहीं होवेगी ॥

५—यह भी याद रखना चाहिये कि जो कोई भजन के रस और आनन्द की प्राप्ती के वास्ते जल्दी करता है उसको चाहिये कि सिर्फ़ मालिक के दर्शनों के निमित्त यह कारज करे और किसी क़िस्म की चाह संसारी या परमार्थी मन में न रखे और सफ़ाई के लिये अपने मन को परखना चाहिये और संसारी फ़जूल चाहें न उठावे और इन्द्रियों के भोगों का वाजवी तौर पर बरताव करे तो आहिस्ता आहिस्ता सफ़ाई होगी ॥

६—खुलासा यह है कि जब तक सच्चा अनुराग मालिक के चरणों का और किसी क़दर वैराग संसार से न होगा और भजन के वक़्त ज़रा ज़ोर देकर मन और इन्द्रियों को संसार की तरफ़ से हटा कर मालिक के चरणों में नहीं लगावेगा तब तक जैसा रस यह चाहता है नहीं आवेगा ॥

७—परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी सर्व समरथ हैं और जब चाहें मन को छिन में मोड़ देवें लेकिन ज़बरदस्ती से सतसंग और भजन में लगाना मंज़ूर नहीं है। इस वास्ते जब तक यह जीव समझ बूझ कर संसार के सुखों और भोगों को तुच्छ नहीं जानेगा और उन से किसी क़दर वैराग नहीं करेगा तब तक वे इस को इस काम में जैसी मदद चाहिये नहीं दे सकते हैं ॥

८—सुरत शब्द योग ऐसा ज़बर असर वाला है कि जो कोई उसकी तरफ़ सच्ची तवज्जह करे तो कैसी ही ज़बर तरंग हो उसे फ़ौरन् हटा सकता है पर जो यह आपही उस तरंग का रस लेवे और उस को न छोड़े और शब्द और स्वरूप और नाम में तवज्जह न करे तो मन और सुरत कैसे सिमट कर चढ़ें और दया की परख कैसे होवे ॥

# राधास्वामी दयाल की दया
# राधास्वामी सहाय

## निजउपदेश राधास्वामी

### भाग ५

### शब्द पहिला

मन रे क्यों गुमान अब करना ॥ टेक ॥
तन तो तेरा खाक मिलेगा ।
चौरासी जा पड़ना ॥ १ ॥
दीन ग़रीबी चित में धरना ।
काम क्रोध से बचना ॥ २ ॥
प्रीत प्रतीत गुरू की करना ।
नाम रसायन घट में जरना ॥ ३ ॥
मन मलीन के कहे न चलना ।
गुर का बचन हिये बिच रखना ॥ ४ ॥
यह मतिमन्द गहे नहिं सरना ।
लोभ बढ़ाय उद्र को भरना ॥ ५ ॥
तुम मानो मत इसका कहना ।
इसके संग जगत बिच गिरना ॥ ६ ॥

इस मूरख की समझ पकड़ना ।
गुरु के चरण कभी न विसरना ॥ ७ ॥
गुरु का रूप नैन में धरना ।
सुरत शब्द से नभ पर चढ़ना ॥ ८ ॥
राधास्वामी नाम सुमिरना ।
जो वह कहें चित्त में धरना ॥ ९ ॥

शब्द दूसरा

राधास्वामी धरा नर रूप जक्त में ।
गुरु होय जीव चिताये ॥ १ ॥
जिन जिन माना वचन समझ के ।
तिन को संग लगाये ॥ २ ॥
कर सतसंग सार रस पाया ।
पी पी तृप्त अघाये ॥ ३ ॥
गुरु संग प्रीत करी उन ऐसी ।
जस चकोर चन्दाये ॥ ४ ॥
गुरु बिन कल नहिं पड़त घड़ी इक ।
दम दम मन अकुलाये ॥ ५ ॥
जब गुरु दर्शन मिलें भाग से ।
मगन होत जस बछड़ा गाये ॥ ६ ॥
ऐसी प्रीत लगी जिन गुरुमुख ।
ता सो गुरु अपनाये ॥ ७ ॥

तन की लगन भोग इन्द्री की।
छिन में सब बिसराये ॥ ८ ॥
गुरु की मूरत बसी हिये में।
आठ पहर गुरु संग रहाये ॥ ९ ॥
अस गुरु भक्ति करी जिन पूरी।
ते ते नाम समाये ॥१०॥
स्वाति बूंद जस रटत पपीहा।
अस धुन नाम लगाये ॥११॥
नाम प्रताप सुरत अब जागी।
तब घट शब्द सुनाये ॥१२॥
शब्द पाय गुर शब्द समानी।
सुन्न शब्द सत शब्द मिलाये ॥१३॥
अलख शब्द और अगम शब्द ले।
निज पद राधास्वामी आये ॥१४॥
पूरा घर पूरी गति पाई।
अब कुछ आगे कहा न जाये ॥१५॥

शब्द तीसरा

सतगुर सरन गहो मेरे प्यारे।
करम जगात चुकाय ॥ १ ॥
भूल भरम में सब जग पचता।
अचरज बात न काहु सोहाय ॥ २ ॥

भाग हीन सब जग आया बस ।
यह निर्मल गति कोई न पाय ॥ ३ ॥
जिन पर दया आदि करता की ।
सो यह अमृत पीवन चाय ॥ ४ ॥
कहां लग महिमा कहुं इस गति की ।
विरलय गुरुमुख चीन्हत ताहि ॥ ५ ॥
बिन गुरु चरन और नहिं भावे ।
इस आनन्द में रहे समाय ॥ ६ ॥
दरशन करत पिंड सुध भूली ।
फिर घर बाहर सुध क्या आय ॥ ७ ॥
ऐसी सुरत प्रेम रंग भीनी ।
तिनकी गति क्या कहूं सुनाय ॥ ८ ॥
जोग बैराग ज्ञान सब रूखे ।
यह रस उन में दीखे न ताय ॥ ९ ॥
बड़ भागी कोइ बिरला प्रेमी ।
तिन यह नियामत मिली अधिकाय ॥ १० ॥
राधास्वामी कहत सुनाई ।
यह आरत कोइ गुरुमुख गाय ॥ ११ ॥

शब्द चौथा

प्रेमी सुनो प्रेम की बात ॥ टेक ॥
सेवा करो प्रेम से गुर की ।
और दर्शन पर बल २ जात ॥ १ ॥

वचन पियारे गुरु के ऐसे ।
जस माता सुत तोतरी बात ॥ २ ॥
जस कामी को कामिन प्यारी ।
अस गुरमुख को गुर का गात ॥ ३ ॥
खाते पीते चलते फिरते ।
सोवत जागत बिसर न जात ॥ ४ ॥
खटकत रहे भाल ज्यों हियरे ।
दर्दी को ज्यों दर्द समात ॥ ५ ॥
ऐसी लगन गुरू संग जाकी ।
वह गुरमुख परमारथ पात ॥ ६ ॥
जब लग गुरु प्यारे नहिं ऐसे ।
तब लग हिरसी जानो जात ॥ ७ ॥
मन मुख फिरे किसी का नाहीं ।
कहो क्योंकर परमारथ पात ॥ ८ ॥
राधास्वामी कहत सुनाई ।
अब सतगुर का पकड़ो हाथ ॥ ९ ॥

शब्द पांचवां

गुर चरण पकड़ दृढ़ भाई ।
गुर का संग करो बनाई ॥ १ ॥
गुर बचन करो आधारा ।
गुर दर्श निहारो सारा ॥ २ ॥
गुरु की गति अगम अपारा ।
गुरु अस्तुति करो संवारा ॥ ३ ॥
गुर राखो हिरदे मांहीं ।
तो मिटे काल परछाहीं ॥ ४ ॥

भोगों की आसा त्यागो।
मंसा तज जग से भागो ॥ ५ ॥
आसा गुर शब्द लगाओ।
मंसा गुर पद में लाओ ॥ ६ ॥
आसा और मंसा मोड़ो।
मन इन्द्री गुर में जोड़ो ॥ ७ ॥
दिन रात रहे गुर ध्याना।
गुर बिन कोइ और न जाना ॥ ८ ॥
गुर स्वांस गिरास न बिसरे।
तू पल पल गा गुर जसरे ॥ ९ ॥
गुर हैं हितकारी तेरे।
गुर बिन कोइ मित्र न हेरे ॥१०॥
गुर फन्द छोड़ावें जम के।
गुर मर्म लखावें सम के ॥११॥
भौजल से पार उतारें।
छिन छिन में तुझे संवारें ॥१२॥
ज्यों निज अंडा सेवे काछा।
त्यों गुर राखें तेरी पछा ॥१३॥
गुर सम कोइ और न रच्छक।
कुल कुटम्ब सब जानो तच्छक ॥१४॥
ताते गुर को कभी न छोड़ो।
कनिक कामिनी से मन मोड़ो ॥१५॥
गुर की भक्ति सदा सुख दाई।
गुर बिन मन बुध भी दुखदाई ॥१६॥

भी देखते हैं। और जो निरे परचे और करामात के गाहक हैं उनको परचा दिखाने की मौज नहीं है॥

(९) राधास्वामी दयाल की सरन का दरजा बहुत ऊंचा है और वैसे तो हर कोई कहता है कि हमने सरन ले ली। पूरे सरन वालों की यह हालत है कि उनको सिवाय सतगुर और राधास्वामी दयाल के और दूसरा कोई प्यारा नहीं लगता है। जिस की यह हालत है उसका कहना सब दुरुस्त है—पहिले जो संत हुए उन्हों ने जब तक जीव ने तन मन धन नहीं भेंट किया उद्धार नहीं किया—पर अब राधास्वामी दयाल जीवों को दुखी और बलहीन देखकर थोड़ी दीनता और प्रीत पर उद्धार अपनी तरफ़ से दया करके फ़रमाते हैं इस वास्ते जिसको सतगुर के दर्शन और सेवा और सतसंग और सुर्त शब्द का अभ्यास परापत है वही जीव बड़भागी हैं॥

(१०) गुरमुख उसका नाम है जो राधास्वामी दयाल को मालिक कुल समझे और उनकी किसी करतूत पर तरक न करे और अभाव न लावे—मसलन् किसी के घर में मौत हो गई या कोई दुख आकर पड़ा या नुकसान हो गया या गरमी ज्यादा हुई या सर्दी ज्यादा हुई या बारिश ज्यादा हुई या बिलकुल न हुई या बीमारी या मरी या और कोई आफ़तें और मुश्किल पड़ीं—तो उस वक़्त ऐसा न कहे कि ऐसा मुनासिब न था या यह बेजा या बुरा हुआ बल्कि यह समझना चाहिये कि जो हुआ सो मौज से हुआ और ऐसाही मुनासिब होगा और इसी में मसलहत

होगी तो यह बात किसी पूरे गुरमुख से बन आवेगी और किसी की ताक़त नहीं है और जो सतसंगी हैं उनको भी चाहिये कि जिस क़दर हो सके उसी मुआफ़िक़ अपनी समझौती और बरताव दुरुस्त करते जावें ॥

(११) जब तकलीफ़ होवे तब हुज़ूर सतगुर राधास्वामी दयाल को याद करे वे फ़ौरन सेवक के पास निज रूप से मौजूद हैं—काल और करम उस रूप के पास नहीं आ सक्ते हैं दूरही दूर से डराते हैं और आप भी डरते हैं फिर सतगुर राधास्वामी दयाल की गोद में किसी तरह का डर नहीं है वे हर वक़्त रक्षक हैं मौज और मसलहत उनकी सेवक नहीं जान सक्ता है—पर वे ख़ूद जानते हैं और जो मौज होवे तो सेवक को भी जना देवें शब्द रूप सुर्त रूप नेत्र रूप आनन्द रूप हर्ष रूप और फिर अरूप हैं ॥

# राधास्वामी दयाल की दया
# राधास्वामी सहाय

---

## निजउपदेश राधास्वामी

### भाग ७

#### गुरदेव का अंग

जो गुरु बसें बनारसी शिष्य समुंद्र तीर ॥
एक पलक बिसरे नहीं जो गुन होय शरीर ॥ १ ॥

पहिले दाता सिष भया जिन तन मन अरपा सीस ॥
पीछे दाता गुर भये जिन नाम किया बखसीस ॥ २ ॥

कोटिन चंदा उगवें सूरज कोट हजार ॥
सतगुर मिलिया बाहरा दीसे घोर अंधार ॥ ३ ॥

गुर को सिर पर राखिये चलिये अज्ञा माहिं ॥
कहें कबीर ता दास को तीन लोक डर नाहिं ॥ ४ ॥

#### सेवक का अंग

सेवक सेवा में रहे सेवक कहिये सोय ॥
कहें कबीर सेवा बिना सेवक कभी न होय ॥ १ ॥

सेवक सेवा में रहे अंत कहूं मत जाय ॥
दुख सुख सिर ऊपर सहै कहें कबीर समझाय ॥ २ ॥

सेवक स्वामी एक मत जो मत में मत मिल जाय ॥
चतुराई रीझैं नहीं रीझैं मन के भाय ॥ ३ ॥
फल कारण सेवा करे तजै न मन से काम ॥
कहै कबीर सेवक नहीं चहै चौगुना दाम ॥ ४ ॥

### भक्ती का अंग

कबीर गुर की भक्ति कर तज विषया रस चौज ॥
बार २ नहिं पाइहै मानुष जन्म की मौज ॥ १ ॥
भक्ति भाव भादों नदी सभी चलीं घहराय ॥
सलिता सोई सराहिये जो जेठ मास ठहराय ॥ २ ॥
गुर भक्ती अति कठिन है ज्यों खांडे की धार ॥
बिना सांच पहुंचे नहीं महा कठिन व्योहार ॥ ३ ॥
भक्ति दुहेली गुरू की नहीं कायर का काम ॥
सीस उतारे हाथ सों सो लेसी सतनाम ॥ ४ ॥
जब लग भक्ति सकाम है तब लग निरफल सेव ॥
कहें कबीर वे क्यों मिलें निह कामी निज देव ॥ ५ ॥
कबीर गुर की भक्ति का मन में बहुत हुलास ॥
मन मनसा मांजे नहीं होंन कहत है दास ॥ ६ ॥
हरष बड़ाई देख कर भक्ति करे संसार ॥
जब देखे कुछ हीनता औगुन धरे गंवार ॥ ७ ॥
जहां भक्ति तहां भेष नहिं वर्णाश्रम तहां नाहिं ॥
नाम भक्ति जो प्रेमसों सो दुर्लभ जग माहिं ॥ ८ ॥
भक्ति पदारथ जब मिले तब गुर होंय सहाय ॥
प्रेम प्रीत की भक्ति जो पूरन भाग मिलाय ॥ ९ ॥

## प्रेम का अंग

प्रेम पियाला जो पिये सीस दच्छिना देय ॥
लोभी सीस न दे सकै नाम प्रेम का लेय ॥ १ ॥
जा घट प्रेम न संचरे सो घट जान मसान ॥
जैसे खाल लुहार की स्वांस लेत बिन प्रान ॥ २ ॥
जहां प्रेम तहां नेम नहीं तहां न बुध व्योहार ॥
प्रेम मगन जब मन भया तब कौन गिने तिथि बार ॥ ३ ॥
जोगी जंगम सेवड़ा सन्यासी दरवेश ॥
बिना प्रेम पहुंचे नहीं दुरलभ सतगुर देश ॥ ४ ॥
पीया चाहै प्रेम रस राखा चाहै मान ॥
एक म्यान में दो खड़ग देखा सुना न कान ॥ ५ ॥
पिया रस पिया सो जानिये उतरे नहीं खुमार ॥
नाम अमल माता रहै पिये अमी रस सार ॥ ६ ॥
जैसी लौ पहिले लगी तैसी निबहै ओर ॥
अपनो देह की को गिने तारे पुरष करोड़ ॥ ७ ॥
लागी २ क्या करे लागी नाहीं एक ॥
लागी सोई जानिये जो करै कलेजे छेक ॥ ८ ॥

## पतिव्रता का अंग

पतिव्रता मैली भली काली कुचिल कुरूप ॥
पतिव्रता के रूप पर वारूं कोटि सरूप ॥ १ ॥
मैं सेवक समरत्थ का कबहूं न होय अकाज ॥
पतिव्रता नागी रहे तो वाही पति को लाज ॥ २ ॥
इक चित होय न पिया मिलें पतिव्रत ना आवे ॥
चंचल मन चहुं दिस फिरे पिया कहो कैसे पावे ॥ ३ ॥

एक नाम को जान कर दूजा देय बहाय ॥
तीरथ व्रत जप तप नहीं सतगुर चरन समाय ॥ ४ ॥

सूरमां का अंग

खेत न छांडे सूरमां जूझे दो दल माहिं ॥
आसा जीवन मरन की मन में राखे नाहिं ॥ १ ॥
अब तो जूझे ही बनें मुड़ चाले घर दूर ॥
सिर साहब को सौंपते सोच न कीजे सूर ॥ २ ॥
आव आंच सहना सुगम सुगम खड़ग की धार ॥
नेह निवाहन एक रस महा कठिन व्योंहार ॥ ३ ॥
नेह निवाहे ही बने सोचे बनें न आन ॥
तन दे मन दे सीस दे नेह न दीजे जान ॥ ४ ॥
सूरा नाम धराय कर अब क्या डरपे वीर ॥
मंड रहना मैदान में सन्मुख सहना तीर ॥ ५ ॥
तीर तुपक से जो लड़े सो तो सूर न होय ॥
माया तज भक्ती करे सूर कहावे सोय ॥ ६ ॥

मृतक का अंग

जीवत मिरतक हो रहो तजो खलक की आस ॥
रक्षक समरथ सतगुरू मति दुख पावे दास ॥ १ ॥
मन को मिरतक देख के मति मानें विश्वास ॥
..ध जहां लो भय करें जब लग पिंजर स्वांस ॥ २ ॥

बिरह का अंग

विरहा आया दर्द से कड़ुआ लागा काम ॥
काया लागी काल होय मीठा लागा नाम ॥ १ ॥

हंस २ कंत न पाइयां जिन पाया तिन रोय ॥
हांसो खेले पिय मिलें तो कौन दुहागिन होय ॥ २ ॥
जो जन बिरही नाम के तिनको गत है येह ॥
देही से उद्यम करें सुमिरन करें बिदेह ॥ ३ ॥
सो दिन कैसा होयगा गुरू गहेंगे बांह ॥
अपनाकर बैठावहीं चरन कंवल की छांह ॥ ४ ॥

परचे का अंग

हम वासी उस देस के जहं बारह मास बिलास
प्रेम भिरे बिगसे कंवल तेज पुंज परकाश ॥ १ ॥
संशय करूं न मैं डरूं सब दुख दिये निवार ॥
सहज सुन्न में घर किया पाया नाम अधार ॥ २ ॥
पूरा सों परचे भया दुख सुख मेला दूर ॥
जम सों बाक़ी कट गई साईं मिला हजूर ॥ ३ ॥
राता माता नाम का पीया प्रेम अघाय ॥
मतवाला दीदार का मांगे मुक्ति बलाय ॥ ४ ॥

साध का अंग

कबीर संगत साध की जौ की भूसी खाय ॥
खीर खांड भोजन मिले साकित संग न जाय ॥ १ ॥
कबीर संगत साध की ज्यों गंधी का बास ॥
जो कुछ गंधी दे नहीं तो भी बास सुबास ॥ २ ॥
रिद्ध सिद्ध मांगूं नहीं मांगूं तुम पै येह ॥
निस दिन दर्शन साध का कहें कबीर मोहि देह ॥ ३ ॥
निरबैरी निहकामता स्वामी सेती नेह ॥
विषया सों न्यारा रहे साधन का मत येह ॥ ४ ॥

साध नदी जल प्रेम रस तहां प्रछालूं अंग ॥
कहैं कबीर निरमल भया साधू जन के संग ॥ ५ ॥
कबीर दर्शन साध का साहब आवैं याद ॥
लेखे में सोई घड़ी बाकी के दिन बाद ॥ ६ ॥
नहिं सीतल है चन्द्रमा हिम नहिं सीतल होय ।
कबीर सीतल संत जन नाम सनेही सोय ॥ ७ ॥

शब्द का अंग

शब्द गुरु को कीजिये बहुतक गुरू लवार ॥
अपने २ लोभ को ठौर ठौर बट मार ॥ १ ॥
शब्द बिना सुर्त आंधरी कहो कहां को जाय ॥
द्वार न पावे शब्द का फिर २ भटका खाय ॥ २ ॥
यही बड़ाई शब्द की जैसे चुम्बक भाय ॥
बिना शब्द नहिं उबरे जो केता करे उपाय ॥ ३ ॥
सही टेक है तासकी जाके सतगुर टेक ॥
टेक निबाहे देह भर रहे शब्द मिल एक ॥ ४ ॥

सुमिरन का अंग

सुमिरन से सुख होत है सुमिरन से दुख जाय ॥
कहैं कबीर सुमिरन किये साईं माहिं समाय ॥ १ ॥
राजा राना राव रंक बड़ा जो सुमिरे नाम ॥
कहैं कबीर बड्डों बड़ा जो सुमिरे निःकाम ॥ २ ॥
बाहर क्या दिखलाइये अंतर जपिये नाम ॥
कहा महोला खलक सों पड़ा धनी सों काम ॥ ३ ॥
सहजे ही धुन होत है हरदम घट के माहिं ॥
सुरत शब्द मेला भया मुख की हाजत नाहिं ॥ ४ ॥

### करनी का अंग

करनी बिन कथनी कथै गुरु पद लहै न सोय ॥
बातों के पकवान से धापा नाहीं कोय ॥ १ ॥
कथनी थोथी जक्त में करनी उत्तम सार ॥
कहैं कबीर करनी सबल उतरे भौजल पार ॥ २ ॥
करनी करनी सब कहैं करनी माहिं बिबेक ॥
वह करनी बहि जान दे जो नहिं परखै एक ॥ ३ ॥

### बैराग का अंग

टाटे में भक्ती करे ताका नाम सपूत ॥
माया धारी मसखरे केतेही गये ऊत ॥ १ ॥
स्वारथ का सब कोई सगा साराही जग जान ॥
बिन स्वारथ आदर करे सोई संत सुजान ॥ २ ॥
जान बूझ जड़ हो रहै बल तज निरबल होय ॥
कहैं कबीर ता दास को गंज न सकै कोय ॥ ३ ॥

### चेतावनी का अंग

पानी केरा बुल बुला इस मानुष की जात ॥
देखत ही छिप जायगी ज्यों तारा परभात ॥ १ ॥
के खाना के सोवना और न कोई चीत ॥
सतगुर शब्द बिसारिया आदि अंत का मीत ॥ २ ॥
यह दुनियां दो रोज़ की मत कर यासे हेत ॥
गुरु चरनन से लागिये जो पूरन सुख देत ॥ ३ ॥

### बिभिचार का अंग

मुख सों नाम रटा करे निस दिन साधू संग ॥
कहो धों कौन कुफेर से नाहिन लागत रंग ॥ १ ॥

मन दीया कहिं औरही तन साधों के संग ॥
कहैं कबीर कोरी गजी कैसे लागे रंग ॥ २ ॥

असाध का अंग

देखा देखी भक्ति को कबहूं न चढ़सी रंग ॥
विपत पड़े पर छांड़सी ज्यों कैंचुरी भुजंग ॥ १ ॥
तन को जोगी सब करें मन को करै न कोय ॥
सहजे सब सिधि पाइये जो मन जोगी होय ॥ २ ॥

मन का अंग

कबीर मन तो एक है भावे तहां लगाय ॥
भावे गुरु की भक्ति कर भावे विषय कमाय ॥ १ ॥
मन मुरीद संसार है गुरु मुरीद कोइ साध ॥
जो माने गुरु वचन को ताका मता अगाध ॥ २ ॥
मनही को परबोधिये मनही को उपदेश ॥
जो यह मन बस आवही तो शिष्य होय सब देश ॥ ३ ॥
मन के बहुते रंग हैं छिन छिन बदले सोय ॥
एक रंग में जो रहे ऐसा विरला कोय ॥ ४ ॥
कबीर यह मन लालची समझे नहिं गंवार ॥
भजन करन को आलसी खाने को हुशियार ॥ ५ ॥
यह तो गत है अटपटी सटपट लखि न कोय ॥
जो मन की खट पट मिटे चट पट दर्शन होय ॥ ६ ॥

माया का अंग

झीनी माया जिन तजी मोटी गई बिलाय ॥
ऐसे जन के निकट से सब दुख गये हिराय ॥ १ ॥

आस आस जग फंदिया रहे उर्ध लिपटाय ॥
गुरु आसा पूरन करें सकल आस मिट जाय ॥ २ ॥
कबीर माया मोहनी जैसी मीठी खांड़ ॥
सतगुर की किरपा हुई नातर करती भांड़ ॥ ३ ॥
गुरु को छोटा जानकर दुनियां भागी दीन ॥
जीवन को राजा कहें माया के आधीन ॥ ४ ॥
जिनको साईं रंग दिया कभी न होय कुरंग ॥
दिन दिन बानी अग्गली चढ़े सवाया रंग ॥ ५ ॥

काम का अंग

चलो चलो सब कोइ कहे पहुंचे बिरला कोय ॥
एक कनिक और कामिनी दुरगम घाटी दोय ॥ १ ॥
कामी क्रोधी लालची इन से भक्ति न होय ॥
भक्ति करे कोइ सूरमां जात बरन कुल खोय ॥ २ ॥
भक्ति बिगाड़ी कामियां इंद्री केरे स्वाद ॥
हीरा खोया हाथ से जन्म गंवाया बाद ॥ ३ ॥
काम काम सब कोइ कहे काम न चीन्हें कोय ॥
जेती मन की कल्पना काम कहावे सोय ॥ ४ ॥
काम क्रोध सूतक सदा सूतक लोभ समाय ॥
सील सरोवर न्हाइये तब यह सूतक जाय ॥ ५ ॥
जहां काम तहां नाम नहिं जहां नाम नहिं काम ॥
दोनों कबहूं ना मिलें रवि रजनी इक ठाम ॥ ६ ॥
कामिन काली नागिनी तीनों लोक मंझार ॥
नाम सनेही ऊबरे बिषिया खाये झार ॥ ७ ॥

एक कनिक और कामिनी विष फल किये उपाय ॥
देखेहीते विष चढ़े चाखत ही मर जाय ॥ ८ ॥
कामी तो निर्भय भया करे न कबहूं संक ॥
इंद्रिन केरे बस पड़ा भोगे नर्क निसंक ॥ ९ ॥

क्रोध का अंग

क्रोध अग्नि घर में बढ़ी जले सकल संसार ॥
दीन लीन निज भक्ति में तिनके निकट उबार ॥ १ ॥
जग माहिं धोखा घना अहं क्रोध और काल ॥
पार पहूंचा मारिये ऐसा जम का जाल ॥ २ ॥
गार अंगारा क्रोध झल निंदा धूवां होय ॥
इन तीनों को परहरे साध कहावे सोय ॥ ३ ॥
जग में बैरी कोइ नहीं जो मन सीतल होय ॥
यह आपा तू डाल दे दया करे सब कोय ॥ ४ ॥
ऐसी बानी बोलिये मन का आपा खोय ॥
औरन को सीतल करे आपा सीतल होय ॥ ५ ॥
खोद खाद धरती सहे काट कूट बनराय ॥
कुटिल बचन साधू सहे और से सहा न जाय ॥ ६ ॥

मान का अंग

कंचन तजना सहज है सहज त्रिया का नेह ॥
मान बड़ाई ईरषा दुरलभ तजनी येह ॥ १ ॥
माया तजी तो क्या हुआ मान तजा नहिं जाय ॥
मान बड़े मुनिवर गले मान सबन को खाय ॥ २ ॥
ऊंचे पानी ना टिके नीचे ही ठहराय ॥
नीचा होय सो भर पिये ऊंच पियासा जाय ॥ ३ ॥

लेने को सतनाम है देने को अनदान ॥
तरने को है दीनता डूबन को अभिमान ॥ ४ ॥

### सील का अंग

ज्ञानी ध्यानी संजमी दाता सूर अनेक ॥
जपिया तपिया बहुत हैं शीलवंत कोइ एक ॥ १ ॥
सुख का सागर शील है कोई न पावे थाह ॥
शब्द बिना साधू नहीं द्रव्य बिना नहिं शाह ॥ २ ॥

### संतोष का अंग

साध सँतोषी सर्वदा निर्मल जिनके बैन ॥
तिन के दर्शन परस ते जिव उपजे सुख चैन ॥ १ ॥
चाह मिटी चिंता गई मनुआं बे परवाह ॥
जिनको कछू न चाहिये सोई शाहन्शाह ॥ २ ॥
अनमांगा तो अति भला मांग लिया नहिं दोष ॥
उद्र समाना मांग ले निश्चय पावे मोष ॥ ३ ॥

### छिमा का अंग

जहां दया तहां धर्म है जहां लोभ तहां पाप ॥
जहां क्रोध तहां काल है जहां छिमा तहां आप ॥ १ ॥

### सांच का अंग

साधू ऐसा चाहिये सांची कहे बनाय ॥
कै टूटै कै फिर जुड़े बिन कहे भर्म न जाय ॥ १ ॥
सांचे श्राप न लागई सांचे काल न खाय ॥
सांचे को सांचा मिले सांचे माहिं समाय ॥ २ ॥

जाकी सांची सुरत है ताका सांचा खेल ॥
आठ पहर चौंसठ घड़ी साईं सेती मेल ॥ २ ॥

### निंदा का अंग

दोष पराया देख कर चले हसंत हसंत ॥
अपना याद न आवई जाका आदि न अंत ॥ १ ॥
निंदक दूर न कीजिये कीजे आदर मान ॥
निरमल तन मन सब करे बके आनही आन ॥ २ ॥

### विनती का अंग

औगुन हारा गुन नहीं मन का बड़ा कठोर ॥
ऐसे समरथ सतगुरू ताहि लगावें ठौर ॥ १ ॥
सुरत करो मेरे साइयां हम हैं भौजल माहिं ॥
आपे ही वहि जायंगे जो नहिं पकड़ो बांह ॥ २ ॥
जो मैं भूल विगाड़िया नाकर मैला चित्त ॥
साहब गरुवा लोड़िये नफ़र विगाड़े नित्त ॥ ३ ॥
मैं अपराधी जन्म का नख सिख भरा विकार ॥
तुम दाता दुख भंजना मेरी करो सम्हार ॥ ४ ॥
क्या मुख ले विनती करूं लाज आवत है मोहि ॥
तुम देखत औगुन करूं कैसे भाऊं तोहि ॥ ५ ॥

### तीरथ का अंग

तीरथ व्रत कर जग मुआ ठंडे पानी न्हाय ॥
सत्तनाम जाने बिना काल जुगन जुग खाय ॥ १ ॥
न्हाये धोये क्या भया जो मन में मैल समाय ॥
मीन सदा जल में रहै धोये बास न जाय ॥ २ ॥

कोटि कोटि तीरथ करे कोटि कोटि करे धाम ॥
जब लग साध न सेवई तब लग कांचा काम ॥ ३ ॥

भूरत का अंग

पाहन पानी मत पूजिये सेवा जासों बाद ॥
सेवा कीजे साध की सतनाम कर याद ॥ १ ॥
कबीर दुनियां देहरे सीस नवावन जाय ॥
हिरदे मांही गुर बसें तू ताही सों लौलाय ॥ २ ॥

अहार का अंग

खट्टा मीठा चरपरा जिभ्या सब रस लेय ॥
चोर और कुतिया मिल गई पहरा किसका देय ॥ १ ॥
अहार करे मन भावता जिभ्या केरे स्वाद ॥
नाक तलक पूरन भरे को कहिये परशाद ॥ २ ॥

निद्रा का अंग

कबीर सोता क्या करे उठ न रोवे दुक्ख ॥
जाका बासा घोर में सो क्यों सोवे सुक्ख ॥ १ ॥
सोता साध जगाइये करे नाम का जाप ॥
यह तीनों सोते भले साकित सिंह और सांप ॥ २ ॥
जागन से सोवन भला जो कोइ जाने सोय ॥
अंतर लौ लागी रहे सहजे सुमिरन होय ॥ ३ ॥
जागन में सोवन करे सोवन में लौ लाय ॥
सुरत डोर लागी रहे तार टूट नहिं जाय ॥ ४ ॥

व्यापकता का अंग

ज्यों नैनन में पूतली त्यों खालिक घट माहिं ॥
मूरख लोग न जानहीं बाहर ढूंढन जाहिं ॥ १ ॥

ज्यों तिल माहीं तेल है ज्यों चकमक में आग ॥
तेरा प्रीतम तुझ में जाग सके तो जाग ॥ २ ॥

पहुप मध्य ज्यों वास है व्याप रहा सब माहिं ॥
संतों मांही पाइये और कहूं कुछ नाहिं ॥ ३ ॥

### नाम का अंग

हीरा परखै जौहरी शब्द को परखे साध ॥
जो कोइ परखे साध को ताका मता अगाध ॥ १ ॥

सभी रसायन हम करी नहीं नाम सम कोय ॥
रंचक घट में संचरै सब तन कंचन होय ॥ २ ॥

जबही नाम हिरदे धरा भयो पाप को नाश ॥
मानों चिनगी आग की पड़ी पुरानी घास ॥ ३ ॥

### उपदेश का अंग

कथा कीरतन करन की जाके निस दिन रीत ॥
कहैं कबीर वा दास से निश्चय कीजे प्रीत ॥ १ ॥

कथा कीर्तन रात दिन जाके उद्यम येह ॥
कहैं कबीर ता साध की हम चर्णन की खेह ॥ २ ॥

### मित्रत अंग

जाके मन विस्वास है सदा गुरू हैं संग ॥
कोटि काल झकझोलई तऊ न हो चित भंग ॥ १ ॥

जाको राखे साइयां मार न सक्के कोय ॥
बाल न बांका कर सके जो जग वैरी होय ॥ २ ॥

प्रीत बहुत संसार में नाना विधि की सोय ॥
उत्तम प्रीत सो जानिये जो सतगुर से होय ॥ ३ ॥

### तुलसी साहब के दोहे

दिना चार का खेल है झूठा जक्त पसार ॥
जिन बिचार पति ना लखा बूड़े भौजल धार ॥ १ ॥
एक भरोसा एक बल एक आस बिस्वास ॥
स्वांति सलिल गुर चरन हैं चात्रिक तुलसीदास ॥ २ ॥
तुलसी या संसार में पांच रतन हैं सार ॥
साधसंग सतगुरसरन दया दीन उपकार ॥ ३ ॥
पढ़ि पढ़ि कै सब जग मुआ पंडित भया न कोय ॥
ढाई अच्छर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय ॥ ४ ॥

### दादू साहब.

बिपति भली गुर संग में काया कसौटी दुक्ख ॥
नाम बिना किस काम के दादू सम्पति सुक्ख ॥ १ ॥

### चरन दास.

सतगुर के ढिंग जायके सन्मुख खावे चोट ॥
चकमक लग पथरी झड़े सकल जलावे खोट ॥ १ ॥
सतगुर शब्दी तीर है तन मन कियो छेद ॥
बे दर्दी समझे नहीं बिरही पावे भेद ॥ २ ॥
प्रेम बराबर जोग नहिं प्रेम बराबर ज्ञान ॥
प्रेम भक्ति बिन साधवा सबही थोथा ध्यान ॥ ३ ॥
पिया चाहो कि मत चहो मैं तो पिया की दास ॥
पिया के रंग रातो रहूं जग से रहत उदास ॥ ४ ॥

### सहजो बाई

ज्यों तिरिया पीहर बसै सुरत रहै पिउ माहिं ॥
ऐसे जन जग में रहै गुर को भूलै नाहिं ॥ १ ॥

# राधास्वामी दयाल की दया
# राधास्वामी सहाय

निजउपदेश राधास्वामी

भाग ८

## मसनवी

मैं सतगुर पै डालूंगी तन मन को वार ।
मैं चरनों पै कुरबान हूं बार बार ॥ १ ॥
करूं कैसे उनकी दया का बयां ।
दिया मुझ को प्रेम और परतीत दान ॥ २ ॥
खुली आंख जब मुझ को आया नज़र ।
कि दुनिया है धोके की जा सर बसर ॥ ३ ॥
ज़मीन और ज़न और ज़र की है चाह ।
सभी जीव रहते हैं ख़्वार और तबाह ॥ ४ ॥
हुए मुबतिला दाम हिरसो हवस ।
न पावें कहीं चैन वह एक नफ़स ॥ ५ ॥
न मालिक का ख़ौफ़ और न मरने का डर ।
न खोजें कभी अपने घर की खबर ॥ ६ ॥
करें फ़िकर मेहनत से दुनिया के काम ।
रहें इन्द्रियों और मन के गुलाम ॥ ७ ॥

जो दुनिया के नामवरी के हैं काम।
दिलो जां से उस में पचें हैं मुदाम ॥ ८ ॥
भरा हैगा भोगों की ख़्वाहिश से मन।
उसी में लगाते हैं धन और तन ॥ ९ ॥
न शरमो हया उनको मा बाप की।
न कुछ फ़िकर है पुन्न और पाप की ॥ १० ॥
जो मन इन्द्रिी पावें लज़्ज़ात को।
ग़नीमत समझते हैं इस बात को ॥ ११ ॥
जो दुनिया के सामां मुय्यसर हुए।
हुए ख़ुश दिल और मान में सब मुए ॥ १२ ॥
नहीं जीव का अपने उनको ख़ेयाल।
कि मरने पे क्या होयगा उसका हाल ॥ १३ ॥
कहां से वह आता है जाता कहां।
कहां कौन है मालिके जिस्मो जान ॥ १४ ॥
कोइ जो कहाते हैं परमारथी।
जो देखा तो वह हैं निपट स्वारथी ॥ १५ ॥
करें ज़ाहरी पाठ पूजा मुदाम।
सुनें भागवत और गीता तमाम ॥ १६ ॥
मगर दिल पै उनके न होवे असर।
न मरने का ख़ौफ़ और न नरकों का डर ॥ १७ ॥
करें तीरथ और यात्रा शौक़ से।
रक्खें बरत और दान दें ज़ौक़ से ॥ १८ ॥
मगर होवे दुनिया का मतलब ज़रूर।
रहे है यही आस हिरदय में पूर ॥ १९ ॥

जो दुनिया की कुछ आस होवे नहीं।
तो इस काम में पैसा खरचें नहीं ॥२०॥
जो मालिक का भेद इन से कहवे कोई।
उड़ावें हंसी और न माने कभी ॥२१॥
भरा हैगा मन उनका शुवहात से।
न वाचें जेहालत की आफ़ात से ॥२२॥
वह सन्तों के कहने को मानें नहीं।
सफ़ा बुद्धि से बात तोलें नहीं ॥२३॥
कहूं क्या कि दिल में हैं वे नास्तिक।
मगर धन के लेने को हैं आस्तिक ॥२४॥
होवे ऐसे जीवों का कैसे निवाह।
जहन्नुम की अग्नी में पावेंगे दाह ॥२५॥
वहां हाथ मल मल के पछतायेंगे।
किये अपने कामों का फल पायगें ॥२६॥
मदद कोइ उनकी करेगा नहीं।
कोई इनका रोना सुनेगा नहीं ॥२७॥
पकड़ इन को जमदूत देवेंगे मार।
सरप इन की गरदन में देवेंगे डार ॥२८॥
अगिन खंभ से बांध देंगे इन्हें।
अगिन कुंड में गोता देंगे इन्हें ॥२९॥
निहायत दुखी होके चिल्लायेंगे।
यह गफ़लत का फल अपना यों पायेंगे ॥३०॥
निरख करके जीवों का अस हाल ज़ार।
सन्त आय दुनिया में औतार धार ॥३१॥

दया कर सुनावें उन्हें घर का भेद।
मेहर से करें दूर करमों का खेद ॥३२॥
राह घर के जाने की देवें लखा।
सुरत शब्द मारग का देवें पता ॥३३॥
हर एक घट में आवाज़ होती मुदाम।
वही शब्द की धुन है और ओही नाम ॥३४॥
सुने जो कोई धुन को चित धरके प्यार।
वही जीव घर जावे तिरलोकी पार ॥३५॥
सुनो भेद मंज़िल का अब राह के।
वह हैं सात वालाय छ चक्र के ॥३६॥
यह हैं नाम छ चक्रों के सुनो।
गुदा इन्द्री और नाभी गिनो ॥३७॥
चकर चौथा हिरदय गुलू पांचवां।
छटा दोनों आखों के है दरमियां ॥३८॥
इसी जा पै है सुर्त रूह का क़याम।
परे इसके सन्तों के सातों मुक़ाम ॥३९॥
सहसदल है पहला गगन दूसरा।
सुन्न पर महासुन्न का मैदां बड़ा ॥४०॥
गुफ़ा लोक चौथा है सोहंग नाम।
परे इसके सतलोक आला मुक़ाम ॥४१॥
अलख लोक की क्या कहूं दस्तगाह।
अगम लोक सन्तों का है तख़्त गाह ॥४२॥
परे इसके है कुल्ल मालिक का धाम।
अपार और अनन्त राधास्वामी है नाम ॥४३॥

अकह और अगाध और यही है अनाद।
यहीं से उठी मौज और आद नाद ॥४४॥
नहीं कोइ जाने है यह भेद सार।
रहे थक के सब कोइ गगना के वार ॥४५॥
करम और धरम में रहे सब अटक।
नहीं जी के कल्यान की कुछ खटक ॥४६॥
रहे पूजते देवी देवा को झाड़।
न मालिक का खोज और न दिल में पियार॥४७॥
रहें पिछली टेकों में भूले सुदाम।
नहीं जानें महिमा गुरू और नाम ॥४८॥
अगर चाहो तुम अपना सच्चा उद्धार।
तो सतगुर को जल्दी से लो खोज यार ॥४९॥
बचन सन्त सतगुर के चित दे सुनो।
प्रीत और परतीत हृदय धरो ॥५०॥
पिवो चरनअमृत को तुम प्रीत से।
भरम काटो परशादी के सीत से ॥५१॥
करो उनका सतसंग तुम बार बार।
लेवो शब्द मारग का उपदेश सार ॥५२॥
करो मन से मालिक का सुमिरन सुदाम।
परमपुरुष राधास्वामी है उसका नाम ॥५३॥
गुरू रूप का ध्यान हिरदय में लाय।
सुरत और मन शब्द धुन से लगाय ॥५४॥
यह अभ्यास नित घट में करना सही।
कटें मन के औगुन इसी से सभी ॥५५॥

कोइ दिन में दरशन गुरू के मिलें।
सुनो शब्द की धुन सुरत मन खिलें ॥५६॥
इसी तरह नित घट में आनन्द पाय।
बढ़त जाय आनन्द मन शान्ति लाय ॥५७॥
कोई दिन में मुक्ती का पावे सरूर।
तू हो जाय तन मन से न्यारा ज़रूर ॥५८॥
प्रीत और परतीत दिन दिन बढ़े।
तेरे मन में गुरु प्रेम का रंग चढ़े ॥५९॥
उमंग कर तू सतगुर की सेवा करे।
प्रेम अंग ले नित्त आरत करे ॥६०॥
मिले प्रेम की तुझ को दौलत अपार।
सरावेगा भागों को तब अपने यार ॥६१॥
किया अब यह उपदेश का ख़त्म राग।
जो माने उसी के जगे पूरा भाग ॥६२॥
करोगे जो हित चित से नित तुम यह कार।
करें राधास्वामी तुम्हारा उधार ॥६३॥
जपो प्रीत से नित्त राधास्वामी नाम।
पाओ मेहर से एक दिन आद धाम ॥६४॥

बारहमासा

आया मास असाढ़ बिरह के बादल घट छाये ॥
नैनन झड़ता नीर मेघ ज्यों रिम झिम बरसाये ॥
अन्न और पानी नहिं भावे ॥
हरदम पिया की याद बिकल चित चहुंदिस को धावे ॥

खटक दर्शन की हिये साले ॥
बिन प्रीतम दीदार नहीं मन कोइ विधि कर मानें ॥ १ ॥
लागा सावन मास घुमड़ घन चहुं दिस रहा बरखाय ॥
सुन २ पपिहा बोल बिरहनी रही जिय में घबराय ॥
तपन हिय में उठती भारी ॥
ढूंढ़त रही पिया धाम खोज कर बैठी थक हारी ॥
भेख और पण्डित का भरमान ॥
निज घर सुध न लाय रहे सब माया संग अटकान ॥ २ ॥
तीजा भादों मास बिरह की दौं लागी भारी ॥
देखत बस २ हाल पिया आये संत रूप धारी ॥
सहज में मोहि दर्शन दीन्हा ॥
घर का भेद बताय दया कर मोहि अपना कीन्हा ॥
शब्द की घट में राह लखाय ॥
सतगुर चरन पधार सुरत मन धुन संग देत चढ़ाय ॥ ३ ॥
आया मास कुवार सुरत गुर चरनन में लागी ॥
दिन २ सेवा करत प्रीत हिये अंतर में जागी ॥
रूप गुर लागे अति प्यारा ॥
सुनती चित से बचन अमीं की ज्यों बरसे धारा ॥
हिये के मैल भरम निकसे ॥
मगन हुई मन माहिं फूल की कलियां ज्यों बिगसे ॥ ४ ॥
कातिक आया ताक सुरत मन घर की सुध धारी ॥
गुर सरूप धर ध्यान शब्द धुन सुनती झनकारी ॥
निरख घट अंतर उंजियारी ॥
अचरज लीला देख होत अब तन मन सुखियारी ॥

गुरु की बढ़ती नित परतीत ॥
छिन २ दया निहार उमगती नई २ भगती रीत ॥ ५ ॥
अगहन अघ सब कटे सुरत मन निरमल होय आये ॥
मेहर करी गुरदेव तोड़ तिल नभ ऊपर धाये ॥
सुनी वहां घंटा शंख पुकार ॥
सहस कंवल के माहिं निरख रही निरमल जोत उजार ॥
हिये से गुर महिमा गाती ॥
निरखत दया अपार चरन पर नित बल बल जाती ॥ ६ ॥
माघा जाड़ा लाग पूस में मुरझाया काला ॥
सुन धुन गगना पूर सुरत मन झट चढ़ गये बाला ॥
मेघ जहां गरजत घोरम घोर ॥
बाजत धुन मिरदंग काल दल धर भागा घर छोड़ ॥
सुरत गुर दर्शन कर हरखाय ॥
छूटे कर्म कलेश दया गुर छिन २ रही गुन गाय ॥ ७ ॥
माघ महीना लाग खिलत रही चहुं दिस फुलवारी ॥
बंनो डोर चढ़ाय सुरत गई तिरलोकी पारी ॥
खेल रही हंसन संग कर प्यार ॥
मान सरोवर न्हाय सुनत रही किंगरी सारंग सार ॥
सिखर चढ़ गई महासुन पार ॥
सिंघ नाग की टार भंवरगढ़ पहुंची सतगुर सार ॥ ८ ॥
फागुन फाग रचाय पुरुष संग खेलत सुर्त होरी ॥
मुरली बीन बजाय काल से कुल नाता तोड़ी ॥
मची सतपुर में अचरज धूम ॥
जुड़ मिल आये हंस हरख कर आरत गावें घूम ॥

प्रेम रंग भींज रहे सब कोय ॥
अचरज सोभा पुरुष निहारत चरनन सुरत समोय ॥ ९ ॥
चैत महीना चेत अधर को सुध ले सुर्त चाली ॥
पुरुष दई दुर्बीन अलख पुर पहुंची दूर हाली ॥
मगन होय दरस अलख पुर्ष पाय ॥
अरबन रवि उंजियार पुरुष के इक २ रोम लजाय ॥
खबर ले ऊपर को धाई ॥
अगम पुरुष दरबार निरख छबि अद्भुत हरखाई ॥ १० ॥
आया मास वैसाख चित्त में बाढ़ा अनुरागा ॥
अगम लोक के पार ध्यान राधास्वामी चरनन लागा ॥
सुरत चली धीरे से पग धार ॥
निरखा अजब प्रकाश द्वार पर रवि शशि नहीं शुमार ॥
लखा जाय हैरत रूप अनाम ॥
अकह अपार अनंत परम गुर संतन का निज धाम ॥ ११ ॥
सब से जेठा धाम आदि में वहीं से सुर्त आई ॥
काल जाल की फांस फंसी तन मन संग दुख पाई ॥
मिलें कोई सतगुर परम उदार ॥
कर उनका सतसंग प्रेम से तब होवे निरवार ॥
दीन दिल चरन सरन धारे ॥
सुरत शब्द की राह अधर घर चढ़ जावे पारे ॥ १२ ॥
बारह मास पुकार संत की निज महिमां गाई ॥
सूरत शब्द लगाय मिलन का रस्ता बतलाई ॥

भाग बड़ अपना क्या गाऊं ॥
मिल गये राधास्वामी दयाल दई मोहि निज चरनन ठाऊं॥
जिऊं मैं राधास्वामी आधारे ॥
चरनन सुरत लगाय गाऊं मैं धन धन स्वामी प्यारे ॥१२॥

शब्द ३

अरे मन भूल रहा जग माहिं।
पकड़ता क्यों नहिं सतगुर बांह ॥ १ ॥
भरमता निस दिन भोगन लार।
मान धन इस्त्री संग पियार ॥ २ ॥
मोह में जग के रहा भरमाय।
लोभ और काम संग लिपटाय ॥ ३ ॥
सार नरदेही नहिं जानी।
पशू सम बरते अज्ञानी ॥ ४ ॥
खौफ़ मालिक का हिये नहिं लाय।
गया अब जम के हाथ बिकाय ॥ ५ ॥
मौत की याद बिसार रहा।
जगत को सतकर जान रहा ॥ ६ ॥
न सुनता मूरख गुर की बात।
बुद्ध मैली संग ग़ोता खात ॥ ७ ॥
न छोड़े मन की कुटिलाई।
गुरू संग करता चतुराई ॥ ८ ॥
गुरू समझावें बारम्बार।
शब्द गुर धारो हिये पियार ॥ ९ ॥

होत तेरे घट में धुन हर दम।
सुरत से सुनो चित्त कर सम ॥१०॥
धार यह सुन घर से आती।
अमीरस बरखत दिन राती ॥११॥
पकड़ कर चढ़ो सुन्न दस द्वार।
वहां से सत पद धरो पियार ॥१२॥
निरख सतपुर में सतपुर्ष रूप।
अलख और अगम लखो कुलभूप ॥१३॥
परे लख राधास्वामी पुर्ष अनाम।
वहीं है संतन का निज धाम ॥१४॥
होय तब कारज तेरा पूर।
काल और महा काल रहें भूर ॥१५॥
भेद यह गावें गुरू दयाल।
मेहर से तुझको करें निहाल ॥१६॥
न मानें भाग हीन उन बात।
भरम और संसै संग भरमात ॥१७॥
फसा मन माया की फांसी।
कुमत ने डाली हिये गांसी ॥१८॥
रहा फिर हौं मैं संग बंधाय।
प्रीत गुर प्रेमी संग नहिं लाय ॥१९॥
नीच मन होय न सांचा दीन।
मान मद हिरदे में भरलीन ॥२०॥
कहो कस छूटें ऐसे जीव।
प्रेम बिन कस पावें सच पीव ॥२१॥

काल को खावें जिस दिन मार।
रोग और सोग संग बीमार ॥२२॥
करें जो राधास्वामी अपनी मेहर।
हटावें काल करम का कहर ॥२३॥
सरन में ज्यों त्यों कर लावें।
सुरत मन तब धुन रस पावें ॥२४॥
बने कोइ दिन में तब कुछ काज।
प्रेम का पावें अद्भुत साज ॥२५॥
मेहर राधास्वामी बिन कुछ नहिं होय।
चरन में उनकी सुरत समोय ॥२६॥
भजो नित राधास्वामी नाम दयाल।
होंय तब निरबल मन और काल ॥२७॥
धीर गहि भक्त भजन करना।
रूप राधास्वामी हिये धरना ॥२८॥
बढ़ाना नित चरनन में प्रीत।
पकाना घट में गुर परतीत ॥२९॥
बने जब डौल करो सतसंग।
करो तन मन से सेव उमंग ॥३०॥
लगे तब तुम्हरा थल बेड़ा।
चरन राधास्वामी हिये हेरा ॥३१॥
होश कर चेतो अब तन में।
सरन गहो राधास्वामी अब मन में ॥३२॥
नहीं तो भरमो चौरासी।
सहो तुम फिर फिर जम फांसी ॥३३॥

भूल और गफ़लत अब छोड़ो ।
चरन में राधास्वामी मन जोड़ो ॥२४॥

समझ यह दीनी खोल सुनाय ।
कोई बड़ भागी माने आय ॥२५॥

मेहर राधास्वामी की पावे ।
जतन करके घर को जावे ॥२६॥

हुआ यह निजउपदेश तमाम ।
गाऊं मैं छिन छिन राधास्वामी नाम ॥२७॥